International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2022; 4(2): 86-87
Received: 26-05-2022
Accepted: 02-07-2022

डॉ. दीपक कुमार राय
पीएच,डी, स्नातकोत्तर संगीत विभाग,
ति. माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय,
भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. दीपक कुमार राय
पीएच,डी. स्नातकोत्तर संगीत विभाग,
ति. माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय,
भागलपुर, बिहार, भारत

बिहार में लोकवाद्यों का महत्व

डॉ. दीपक कुमार राय

प्रस्तावना

लोकवाद्यों का महत्व सर्वोपरी है। लय संगीत में नहीं नृत्य के साथ–साथ मनुष्य के प्रत्येक कार्य चलना, बोलना, खाना आदि सभी क्रियाओं में एक लय होती है। इसी लय के आधार पर लोकगीतों का निर्माण हुआ। चाहे वाद्य जिस प्रकार का हो, एक विशेष संकेत प्रदान करता है। जो श्रोताओं को उससे सम्बद्ध वस्तुस्थित का स्वतः ज्ञान करा देता है। नृत्य तथा कण्ठ संगीत के साथ–साथ नाटकों में भी लोकवाद्यों का होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इसके बिना नाटक निर्जीव सा प्रतीत होता है। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र में लोकवाद्यों का विशेष महत्व है।

शास्त्रीय संगीत की विवेचना में लोकवाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन लोकवाद्यों के बिना शास्त्रीय संगीत का कोई अस्तित्व नहीं है। प्रचीन काल से लेकर अब तक लोकवाद्यों का सहारा लेना पडता है। महर्षि भरत ने श्रुतियों के प्रत्यक्षीकरण के लिए एक समान बनी दो वीणाओं का सहारा लिया था।

ग्राम मूर्च्छना, जातियों आदि को समझने के लिए वाद्यों का प्रयोग ही सर्वोत्तम है। संगीत के मूलतत्व को समझने की दृष्टि से, स्वतंत्र वादन की दृष्टि से, अन्य कलाओं में सहयोग प्रदान करने की दृष्टि से, विभिन्न अवसरों पर प्रयोग की दृष्टि से प्रतीकात्मक दृष्टि, स्वरों की विश्लेषणात्मक कार्यो की दृष्टि से, वाद्य कला जितनी अधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक है उतनी अन्य कोई कला नहीं है। "डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने तो लोक साहित्य एवं लोकसंगीतों की महत्ता को भाषा–शास्त्रियों की अमुल्य निधि माना है।"

मानव जीवन में लोकवाद्यों का प्रमुख स्थान है। पौराणिक गाथाओं में हम लोकवाद्यों का स्वरूप पाते हैं, शिवजी डमरू बजाते थे, जो आज हमारे सामने लोकवाद्यों के रूप में प्रसिद्ध है। भगवान विष्णु के हाथ में शंख है जिसे बजाकर विष्णु ने प्रथम नाद उत्पन्न किया। रामायण काल में रावण महान संगीतज्ञ माना गया है। वह शिवजी की स्तुति के समय मृदंग बजाया करता था। महाभारत का काल रामायण के पश्चात् आता है। इस कारण इस काल तक संगीत अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गया था। महाभारत काल में संगीत नर–नारियों में विख्यात था।

महाभारत काल में गीत, नाटक, नृत्य आदि का प्रयोग समय–समय से विभिन्न अवसरों पर किया जाता था। भगवान श्रीकृष्ण वंशी वादन में तो प्रवीण थे ही, साथ–साथ गायन, वादन तथा नृत्य में भी पारंगत थे।

अर्जन उस युग के सुप्रसिद्ध वीणा वादक थे। विराट पर्व में अर्जुन ने अज्ञातवास के समय वृहन्नला के रूप में राजा विराट के अन्तःपुर में संगीत शिक्षण का कार्य किया था। यथा–

'गीतं नृत्तं विचित्र च वदिन्तं विविधं तथा।
षिक्षयिष्याम्हयं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः।।'[1]

मानव शुरू से ही अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और अनुभवी रहा है। उसमें विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति की शक्ति अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक होती है। जिसके माध्यम से वह असभ्यता से सभ्यता की ओर निरन्तर बढता रहा है। मानव अपने हृदय की उभरती भावनाओं को हमेशा गायन, वादन एवं नृत्यों के माध्यम से प्रकट करता है।

मनुष्य का जन्म इस संसार में जब से हुआ है तब से आज तक प्रतिदिन कोई न कोई नया आविष्कार करता आ रहा है। मनुष्य पहले एकांकी जीवन व्यतीत करता था लेकिन जब दो चार लोग आपस में मिलते और अपनी बातें करते तो उन्हें आपस में मिलना–जुलना और बातें करना अच्छा लगने लगा और इन्होंने एक समूह की रचना की और इसी समूह को समाज की संज्ञा दी गई। मनुष्य धीरे–धीरे इन्हें इस समाज की आदत पड गई और तभी से आज तक मनुष्य एक सामाजिक प्राणी कहलाने लगा। आज समाज के बगैर मनुष्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। मनुष्य समाज में रहकर ही खाना, खेलना, पढना, गाना आदि सीखता है।

पूर्व में शिकार करना मनुष्य की प्रवृति थी। मनुष्य मार लाता और कच्चा मांस खाकर ही अपना पेट भरता था।

किन्तु अचानक पत्थर के घर्षण से उत्पन्न ध्वनि और आग ने मनुष्य के जीवन में एक कौतुहल उत्पन्न कर दिया। देखते ही देखते मनुष्य ने आग का आविष्कार कर लिया जिससे वे कच्चा मांस पकाकर खाने लगा। धीरे–धीरे मनुष्य ने कृषि–कार्य करना प्रारंभ कर दिया और हमारा देश कृषि प्रधान देश कहलाने लगा। अब मनुष्य ने मनोरंजन की बातें सोचने लगा। पत्थर के घर्षण से निकली ध्वनी को उन्होंने संगीत का जरिया बनाया। समाज आगे बढा और लोगों की सोच बढती गई। काम करती हुई महिलाएँ धीरे–धीरे गीत गुनगुनाती और उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि काम करते वक्त गीत गुनगुनाने से उनके उपर कार का असर कम पडता है और थकावट भी कम महसूस होती है तो उन्होंने इस गुनगुनाहट को अपनी दिनचर्या बना डाली। धान कूटती महिलाएँ उखल की थाप को और गेहूँ पीसती औरतें चक्की की घरघराहट को ही अपने गीत का माध्यम बना कर उसी को लय मानकर गीत गाने लगी। हल चलाते हुए किसान बैलों के खुरों की थपथपाहट और बैलों के गले में बंधी घंटी को ही लय का माध्यम बनाकर गीत गुनगुनाने लगा। औरतें मंदिरों व शिवालयों में जब भक्ति गीत गाती तो वहाँ पूजा की थाली को बजाकर भजन कीर्त्तन किया करती थी। धीरे–धीरे ताल उनके जीवन का अनिवार्य विषय बन गया और उन्होंने ताल रूपी वाद्ययंत्र का निमार्ण प्रारंभ कर दिया। उन्होंने अपने मनोरंजन, गीत, भजन, कीर्त्तन लोग आपस में किया करते थे और वे गीत के साथ–साथ इन्होंने नाचना शुरू कर दिया जिससे लोगों का मनोरंजन और अधिक होने लगा। मंदिरों में हो रहे भजन कीर्त्तन में शामिल होने के लिए पूरे गांव से लोग इक्कठा होने लगे। सभी मिलकर गाने बजाने और नाचने लगे। इसी तरह गायन वादन और नृत्य तीनों मिलकर संगीत का अनिवार्य अंग बन गया। स्वाभाविक है कि जब संगीत में तीनों का मिश्रण है तो वादन का महत्व बराबर का होगा। स्वर और लय की अभिव्यक्ति को संगीत कहते हैं। लय संगीत में नहीं नृत्य के साथ–साथ मनुष्य के प्रत्येक कार्य चलना, बोलना, खाना आदि सभी क्रियाओं में एक लय होती है। इसी लय के आधार पर लोकगीतों का निमार्ण हुआ। लय युक्त गीत श्रोताओं और गायकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। जिस गीत में निश्चित लय नहीं होते वे लोगों को खटकता है और यही कारण है कि लोकगीत तर्कप्रधान न होकर ह्रदय प्रधान होता है। संगीत और वाद्य का लोक जीवन में लोकगीतों की एक धारा अनादिकाल से चली आ रही है। लोकगीत मनुष्य के ह्रदय की प्राकृतिक भावनाओं की, तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है। जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय और धुन प्रधान होते है। लय को यदि किसी वैज्ञानिक ढंग से ध्वनि लहरों में बदल दिया जाय तो निश्चित रू॰ से एक झंकार का रू॰ होगा और यही झंकार हमारे लोकसंगीत में ह्रदय को तन्मय करने के लिए लय की आवश्यकता पडी और तभी से वाद्यों का प्रयोग प्रारंभ हो गया। मानव जीवन में वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। पौराणिक गाथाओं में हमें वाद्यों का उल्लेख मिलता है।अतः लोक जीवन में कलाओं को सुरक्षित रखने में वाद्यों का काफी योगदान है। यही कारण है कि वाद्य आज भी मानव–जीवन का आवश्यक अंग बन गया। मानव–जीवन के साथ वाद्यों का घनिष्ठतम सम्बन्ध रहा है। आदि काल से मानव किसी न किसी रूप में वाद्यों का निमार्ण करता आया है। जैसे–जैसे मनुष्य और सुसंस्कृत होता गया है वैसे ही वाद्य का भी विकास होता गया। शास्त्रीय संगीत के दो मूल तत्व हैं, स्वर तथा लय। किन्तु संगीत वाद्य इन्हीं स्वर तथा लय के द्वारा गायन तथा नृत्य कला के बिना भी श्रोताओं को आनन्द की अनुभूति कराती है। वाद्य संगीत में इतनी अभिव्यंजना शक्ति होती है जितनी किसी अन्य कला में नहीं इसी के द्वारा मनुष्य को कई घण्टों तक संगीत सुनने तथा उसमें रमाये रखने की शक्ति है।

महर्षि भरत ने कहा है लोकवाद्यों का प्रयोग प्रत्येक शुभ कार्यो में शुभ तथा सफलता के सूचक है। लोकवाद्यों का प्रयोग विभिन्न स्थानों पर होता है जैसे मन्दिरों में पूजा के समय घण्टा, शंख आदि, युद्ध क्षेत्र में दुदुंभि, धौंसा आदि, विवाह या मांगलिक कार्यो में शहनाई आदि वाद्यों का जो वादन होता है वह प्रतीत स्वरूप है जिससे व्यक्ति दूर रहकर भी समझ जाता है कि अमुक स्थान पर पूजा, युद्ध, विवाहादि मांगलिक कार्य हो रहा है। चाहे वाद्य जिस प्रकार का हो, एक विशेष संकेत प्रदान करता है। जो श्रोताओं को उससे सम्बद्ध वस्तुस्थित का स्वतः ज्ञान करा देता है। नृत्य तथा कण्ठ संगीत के साथ–साथ नाटकों में भी लोकवाद्यों का होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इसके बिना नाटक निर्जीव सा प्रतीत होता है। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र में लोकवाद्यों का विशेष महत्व है।

शास्त्रीय संगीत की विवेचना में लोकवाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन लोकवाद्यों के बिना शास्त्रीय संगीत का कोई अस्तित्व नहीं है। प्रचीन काल से लेकर अब तक लोकवाद्यों का सहारा लेना पडता है। महर्षि भरत ने श्रुतियों के प्रत्यक्षीकरण के लिए एक समान बनी दो वीणओं का सहारा लिया था।

ग्राम मूर्च्छना, जातियों आदि को समझने के लिए वाद्यों का प्रयोग ही सर्वोत्तम है। संगीत के मूलतत्व को समझने की दृष्टि से, स्वतंत्र वादन की दृष्टि से, अन्य कलाओं में सहयोग प्रदान करने की दृष्टि से, विभिन्न अवसरों पर प्रयोग की दृष्टि से प्रतीकात्मक दृष्टि, स्वरों की विश्लेषणात्मक कार्यो की दृष्टि से, वाद्य कला जितनी अधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक है उतनी अन्य कोई कला नहीं है। "डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने तो लोक साहित्य एवं लोकसंगीतों की महत्ता को भाषा–शास्त्रियों की अमुल्य निधि माना है।"[2]

आज हमारे जीवन में चारों ओर लोकवाद्य फैले हुए हैं। ये लोकवाद्य किसी न किसी रूप में जीवन से जुडे हैं। संगीत वाद्य हमारी मानसिक भावनाओं को वहन करने में पूरी तरह सक्षम रहे हैं। इन्हीं लोकवाद्यों द्वारा हम अपनी भावनाओं को दूसरों तक तथा दूसरों की भावनाओं को स्वयं तक समझने में सक्षम होते हैं। 'अनाहत' और 'आहत' नाद के दो भेद हैं। 'आहत नाद' जिसको सुन सकते हैं तथा व्यावहार में ला सकते हैं, अपने पाँच ध्वनि रूपों अर्थात् संगीतरूपी ध्वनि के रूप में दिखाई देता है –

"अनाहतःआहतष्चेति द्विविधो नादस्तत्र
सोऽण्याहतः पन्चविधो नादस्तु परिकीर्तितः।
नक्ष्वामुख्त चमार्णि(चर्मण्य) लौहषारीरजास्तथा।।"[3]

ये संगीतात्मक ध्वनियां नखज, वायुज, चर्मज, लोहज, तथा शारीरण होती है। जिसमें वीणा आदि वाद्य नखज है, वंशी आदि वाद्य वायुज है, मृदंग आदि वाद्य चर्मज है, ताल मंजीरा आदि लोहज है, तथा कंठध्वनि शरीरण है।

लोकसंगीत में मनुष्य भावनाओं की अभिव्यक्ति एवं सौन्दर्य के लिए लोकवाद्य का महत्वपूर्ण स्थान है। भिन्न–भिन्न भाषा, कला और संस्कृति के गीत, समाज देश और काल के अनुसार अपना अलग–अलग अस्तित्व है। लोकगीत की सहजता और उसका सौन्दर्य भिन्न–भिन्न अवसरों पर भिन्न–भिन्न अभिव्यक्तियों के लिए लोकवाद्य अनगिनत पाये जाते हैं– सारंगी, शहनाई, बासुरी, ढोल, बीन, पखावज, तबला, सुरबहार, घुँघरू, शंख, भेरी, दुन्दुभी, मांदल, तासा, नगारा, सिंगा इत्यादि।

संदर्भ सूची

1. भारतीय संगीत वाद्य– डॉ. लालमणि मिश्र, पृ. 24
2. लोक साहित्य की भूमिका– डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 270
3. भारतीय संगीत वाद्य– डॉ. लालमणि मिश्र, पृ.13